होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम शिक्षा के क्षेत्र में नए विमर्श की उपज था। इस कार्यक्रम के मूल में यह विचार निहित था कि बच्चे खुद करके विज्ञान जैसे विषय को ज्यादा बेहतर ढंग से सीख सकते हैं। शिक्षा को परिवेश से जोड़ने और विभिन्न विषयों के बीच की बाड़बंदी को भी ढीला करने में इस कार्यक्रम ने योगदान किया। इस कार्यक्रम को अचानक बंद कर दिए जाने से शिक्षकों का उत्साह कमजोर पड़ा, लेकिन जिन अध्यापकों ने इसके तहत प्रशिक्षण लिया था उनका विज्ञान पढ़ाने का नजरिया तो बदल ही गया। इस लेख में इस कार्यक्रम से जुड़े रहे दो शिक्षकों ने अपने अनुभवों का साझा किया है।

सुनीला मसीह

शिक्षा के क्षेत्र में 35 वर्षों से बतौर अध्यापक कार्यरत हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 एवं इसके अनुरूप बनी पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति की सदस्य रहीं हैं। वर्ष 2009 में सर्व शिक्षा अभियान की राष्ट्रीय समिति की सदस्य भी रहीं।

मनोहर लाल पटेल

38 वर्षों से शासकीय विद्यालय में अध्यापन करते रहे हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के अनुरूप विकसित एन.सी.ई.आर.टी. की विज्ञान विषय की कक्षा 6, 7, एवं 8 की समीक्षा समिति के सदस्य रहे हैं। उत्कृष्ट कार्य के लिए राज्यपाल एवं राष्ट्रपति से पुरस्कृत किए गए हैं।

बच्चे बन गए खोजी

नब्बे के दशक से हाल तक शिक्षा में आर्थिक-राजनैतिक स्तर पर बहुत से बदलाव आए हैं। इसी दौरान शालाओं की संख्या में बड़ी तादाद में बढ़ोतरी हुई है। एक तरफ यह बढ़ोतरी सबको शिक्षा पहुंचाने के इरादे से हुई है तो दूसरी तरफ इसके पीछे व्यावसायिक हित भी सक्रिय रहे हैं। इसी वक्त में बच्चों के लिए शाला अनुभव को बेहतर बनाने के विषय पर भी गंभीर चिन्तन हुआ है। शिक्षा के प्रति सरोकार रखने वाले चिंतकों ने चिंताएं व्यक्त की हैं कि हमारे स्कूल विद्यार्थियों में जिज्ञासा, अवलोकन, चिन्तन और निष्कर्ष तक पहुंच पाने के गुण क्यों विकसित नहीं कर पा रहे हैं? इन गुणों के विकास के लिए स्कूली स्तर की पाठ्यवस्तु में कौनसी अवधारणाएं हों और उन्हें कैसे सिखाया जाए? बिना रटन्त के विद्यार्थियों के सीखने को कैसे सार्थक बनाया जाए? आदि।

मौजूदा शिक्षा प्रक्रियाओं पर चिन्तन के साथ कुछ नतीजे सामने रखे गए। इनमें कहा गया कि हमारी शिक्षा व्यवस्था बजाय बच्चों की स्वाभाविक क्षमताओं के विकास के बहुत ही संकुचित उद्देश्य लेकर चलती है। पाठ्यवस्तु के नियोजन का उद्देश्य सोचने-समझने के कौशलों के विकास के बजाय परीक्षा में 'सही' उत्तर लिखने तक ही सीमित रहता है। शिक्षक-बालक के बीच अंतःक्रिया भी इसी उद्देश्य को पूरा करने तक सीमित रहती है। यह सही है कि बिना अध्यापक और विद्यार्थी के बीच अंतः क्रिया के शिक्षा की कल्पना नामुमकिन है। इन दोनों को जोड़कर देखने से ही शिक्षा संभव है। विद्यार्थियों को ज्ञान का मर्म अध्यापक के साथ संवाद और उनके दिशा-निर्देश में तथा सहपाठियों के साथ की अंतःक्रिया के माध्यम से ही प्राप्त हो सकता है। अंतःक्रिया का होना मात्र ही नहीं बल्कि इस अंतःक्रिया का स्वरूप और चरित्र कैसा है, यह भी बच्चों के सीखने में अहम भूमिका निभाता है।

पिछले दो दशकों में इन विषयों पर काफी चिंतन हुआ है और पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों तथा शैक्षिक सोच में बहुत से महत्त्वपूर्ण बदलाव आए हैं। इन बदलावों के मूल में यह प्रश्न रहे हैं कि विद्यार्थी समझकर सीखें और सीखे हुए का उपयोग कैसे अपने जीवन में कर पाएं? उनके सीखने को परिवेश से कैसे जोड़ा जाए? यही वे सवाल थे जिनके लिए शिक्षण को नई दिशा देने के प्रयास किए गए। विद्यार्थी में सीखने के उत्साह को सर्वोच्च स्थान देने का निर्णय लिया गया। शिक्षा का नियोजन बस्ते के बोझ को कम करके शिक्षा को तर्क-वितर्क, अवलोकन क्षमता और समझ विकसित करने के लिए किया गया। इस दौर में अनेक ऐसे अनुभव हुए जिन्हें बतौर शिक्षक दर्ज करना महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है।

होशंगाबाद जिले के पामली और सोहागपुर के स्कूलों में हमारा लगभग साढ़े तीन दशक तक पढ़ाने का अनुभव रहा। अध्यापक के रूप में हम अपनी पहचान बना रहे थे। इस बीच 1978 में होशंगाबाद जिले में प्रयोगों और गतिविधियों द्वारा विज्ञान विषय पढ़ाने का नवाचारात्मक दौर शुरू हुआ। इस विचार के तहत शिक्षक-प्रशिक्षणों का आयोजन किया गया। शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए देश के चुने विश्वविद्यालयों -- दिल्ली, मुम्बई -- से शिक्षाविदों और वैज्ञानिकों का दल आया। अध्यापकों को उनसे सीखने का अनमोल अवसर मिला। इस कार्यक्रम का मुख्य स्लोगन था -- 'मैंने सुना भूल गया, मैंने देखा याद रहा, मैंने करके देखा समझ गया'।

अनेक अध्यापकों ने 1978 से 1980 के बीच छठी से आठवीं तक की कक्षाओं में विज्ञान शिक्षण का प्रशिक्षण लिया। इन प्रशिक्षणों के बाद प्रारंभ हुआ अध्यापन कार्य। शिक्षकों ने अपनी समझ-बूझ और कौशल के हिसाब से विद्यार्थियों के साथ शिक्षण आरंभ किया। कुछ प्रयोग किए जिनके जरिए विद्यार्थी स्वयं करके सीख सकते थे। ये प्रयोग विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में थे इसलिए शिक्षक-प्रशिक्षणों में भी इन्हें करके देखा गया। कुछ प्रयोग ऐसे भी थे जिन्हें करने में शिक्षकों को झिझक महसूस हुई, लेकिन खुद करके देखने के बाद इन प्रयोगों को उन्होंने बच्चों के साथ भी किया। इन प्रयोगों के माध्यम से बच्चों के सीखने में आए फर्क ने शिक्षकों का उत्साह बढ़ाया। ऐसे कुछ प्रयोगों का उल्लेख करना यहां उचित जान पड़ता है।

अंडे से चूजा बनना

कक्षा आठ की पाठ्यवस्तु में अंडे से चूजा बनने की प्रक्रिया शामिल थी। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों के बीच शून्य दिन से 21 दिन के अंडे को खोलकर अलग-अलग स्थितियों का अवलोकन करवाना था। प्रयोगात्मक क्रियाकलाप द्वारा भ्रूण से लेकर संपूर्ण चूजा बना देखना सभी के लिए एक विचित्र-सा अनुभव था। उसकी आंख, पैर, पूंछ, हृदय व अन्य अंगों को देख पाना एकदम अलग था। शिक्षक इस प्रयोग के लिए तैयार नहीं थे। बड़ी मुश्किल से उन्हें इसके लिए तैयार किया गया। संभवतः सजीव प्राणी के साथ यह प्रयोग शिक्षकों को स्वाभाविक रूप से एक अपराधबोध में धकेल रहा था। प्रयोग खत्म होने के बाद सभी शिक्षकों के चेहरे पर विस्मय के भाव थे। उन्होंने पता नहीं कितनी बार यह अध्याय बच्चों को पढ़ाया होगा लेकिन इसे प्रयोग बतौर करके देखने का उनका पहला अनुभव था। इस गतिविधि द्वारा किए गए शिक्षण कार्य को बच्चों ने अक्सर बहुत अच्छी तरह आत्मसात किया।

लोहा और चुंबक

छठी कक्षा में 'चुम्बक' के साथ प्रयोग करना था, इसलिए लोहे के बुरादे की व्यवस्था करनी थी। विद्यार्थियों से चर्चा की तो उन्होंने कहा कि लैथ मशीन पर से बुरादा प्राप्त कर लेंगे। बच्चों से पूछा, ''क्या हम रेत में से लोहा प्राप्त कर सकते हैं?'' वे हंस पड़े कि रेत से कैसे लोहा मिलेगा? अब विद्यार्थियों को समूह में बांटकर एक-एक छड़ चुम्बक और छोटी प्लास्टिक की डिब्बी दे दी गई और कहा कि इस चुम्बक से पास की नदी की रेत में खेल लो। खेलने का जो भी तरीका विद्यार्थियों ने अपनाया हो पर इतना जरूर हुआ कि चुम्बक के सिरे पर बारीक-बारीक लोहे का बुरादा चिपका। बस फिर क्या था, होड़ लग गई और ढेर सारा बुरादा खेल-खेल में एकत्र कर लिया। इस खेल में जो अनुभव विद्यार्थियों ने स्वयं, बिना पुस्तक, आत्मसात किए वे हैं -

1. सिरों पर लोहे का बुरादा अधिक चिपका।
2. चुम्बक लोहे से बनी वस्तुओं को अपनी ओर खींचता है।

जब कक्षा में पाठ्यपुस्तक से 'चुम्बक' का अध्याय पढ़ाया गया तो वह सबसे रुचिकर अध्याय बना और सभी मुख्य बिन्दु सहज-सरलता से विद्यार्थियों ने आत्मसात किए।

फूल और फल

विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में आई तमाम अवधारणाओं को शिक्षक परंपरागत शिक्षण विधि से व्याख्यान शैली में पढ़ा देने के अभ्यस्त होते हैं। लेकिन यदि वे चाहें तो अपने आसपास

उपलब्ध उस सामग्री को बच्चों के बीच रखकर ज्यादा रोचक और कारगर तरीके से पढ़ा सकते हैं। आरंभिक स्तर के विज्ञान की अधिकांश चीजें उनके परिवेश में उपलब्ध होती हैं। सातवीं कक्षा में 'फूल और फल' समझाने के लिए विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे, खुशबूदार फूल विद्यार्थियों से एकत्र करवाए गए। पुष्प का विच्छेदन करवाकर अंग पहचानने का कार्य करवाया। सभी विद्यार्थी पुष्प को अचरज भरी नजर से देख रहे थे। एक छोटे फूल को ब्लेड से विच्छेदित करने के बाद पुंकेसर-स्त्रीकेशर को देखकर छात्र-छात्राएं स्तब्ध रह गईं।

यह एक बहुत ही सहज प्रयोग था। इसने विद्यार्थियों की आंखों में चमक पैदा कर दी। अब उनका उन्मुखीकरण स्वयं करके देखने की तरफ होने लगा था। इस प्रयोग को करने के लिए किसी तरह का अतिरिक्त श्रम भी नहीं करना पड़ा और बच्चों का सीखना भी संभवतः बेहतर हुआ।

खोज का खजाना

लगभग 10 साल पहले होशंगाबाद जिले में गिल्की के पौधे की पत्तियों पर विशेष प्रकार की संरचनाएं (आकृतियां) उभरकर सामने आने लगीं। समुदाय के लोगों ने इसके लिए अपनी व्याख्या प्रस्तुत की कि पचमढ़ी-पिपरिया के रास्ते पर एक ट्रक से नाग-नागिन दबकर मर गए हैं। विद्यार्थियों से चर्चा की गई कि पत्ती पर विभिन्न आकृतियों के बनने का क्या कारण हो सकता है? विद्यार्थियों के साथ मिलकर खोजना प्रारंभ किया गया। ब्लेड व पिन की सहायता से हम सबने पत्तियों का धीरे-धीरे विच्छेदन किया। अथक प्रयास के बाद एक विद्यार्थी को किसी पत्ती में एक बारीक कीट (इल्ली) मिला, तब पता चला कि कुछ कीट हैं जो पत्ती में से उसका हरा पदार्थ (क्लोरोफिल) खा लेते हैं और कीट की आड़ी-टेढ़ी चाल नाग-नागिन के चित्र को अंकित करती है। समाचार पत्र में इस खोज की खबर छपी।

यह एक छोटी-सी खोज थी जो माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों ने प्रस्तुत की। इस प्रयोग की सफलता इस बात ही में थी कि विद्यार्थियों ने इस समस्या की जांच-पड़ताल के लिए वैज्ञानिक तरीके अपनाए और स्वयं नतीजे पर पहुंचे। एक बार यह अभिवृत्ति विकसित होने पर वे इसे और समस्याओं पर लागू कर सके।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के द्वारा विद्यार्थियों में विज्ञान विषय पढ़ने में रुचि जागृत हुई। यह कठिन विषय आसान बन गया। इस कार्यक्रम के तहत हमारे शिक्षण कार्य को देखने के लिए देश-विदेश से बहुत से लोग आया करते थे। हमारे लिए उत्साहवर्धक यह था कि हम जो कर रहे हैं वह सार्थक है। इस कार्यक्रम के तहत बहुत से शिक्षकों ने इसी रुचि और उत्साह से कार्य किया।

विभिन्न विषयों का आपसी जुड़ाव

शिक्षा में परिवर्तन की दिशा में उठाए अनेक प्रयासों में एक महत्त्वपूर्ण प्रयास यह भी रहा कि जहां तक संभव हो कक्षा 6वीं से 10वीं तक का पाठ्यक्रम तथा विभिन्न विषयों की पाठ्यवस्तु एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हो। हमारा मानना है कि एक अध्यापक अपने अनुभव के अनुसार एक विषय को दूसरे के साथ जोड़कर पढ़ा सकता है।

क्या विज्ञान और अंग्रेजी, इन दोनों विषयों को जोड़कर पढ़ाया जा सकता है? कैसे? क्या अंग्रेजी और विज्ञान की विषयवस्तु में ऐसी कुछ समानता हो सकती है? जुलाई में कक्षा 7वीं में अंग्रेजी कविता 'द रेनबो' (The Rainbow) पढ़ानी थी। बारिश होगी, तब ही इन्द्रधनुष दिखेगा। क्या बिना बारिश के इंद्रधनुष देखा जा सकता है? इस प्रश्न को विद्यार्थियों के सामने यूं ही छोड़ दिया गया। हमने कविता पढ़ी और इन्द्रधनुष भी देखा, बैजानीहपीनाल (बैंगनी, आसमानी, नीला, हरा, पीला, नारंगी, लाल) सात रंगों पर बातचीत हुई। अध्याय समाप्त हुआ तो कुछ विद्यार्थियों के मन में प्रश्न बैठ गया कि क्या बिना बारिश के इन्द्रधनुष देखा जा सकता है? तीन माह बीत गए और अक्टूबर में 'प्रकाश' अध्याय पढ़ाने का अवसर आया। पुनः 'द रेनबो' कविता को स्मरण किया गया। दीवार पर इंद्रधनुष के रंगों को देखने की बात सुनकर सभी बच्चों के चेहरों पर असमंजस के भाव थे, कुछ धीमे-धीमे मुस्कुरा रहे थे। विज्ञान किट से कटोरी, कांच की पट्टी निकाल कर प्रयोग करवाया। पानी एवं सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में दीवार पर इंद्रधनुष की आकृति देखकर सभी विद्यार्थी खुशी से उछल पड़े। प्रश्न का उत्तर सामने था। प्रकाश अध्याय के अन्य प्रयोगों को बड़ी ही सहजता व सरलता से सभी विद्यार्थियों ने आत्मसात किया और पूरी कक्षा में आनंद का माहौल था। इस रोचक गतिविधि ने अंग्रेजी और विज्ञान विषय को एकदम साथ-साथ लाकर खड़ा कर दिया। अगले दिन कई विद्यार्थियों ने कविता के निर्देशानुसार सुंदर चित्रकला करके अपनी कल्पना शक्ति व रचनात्मकता का प्रदर्शन किया।

आशा और निराशा के बीच

वर्ष 2000 आया और मध्य प्रदेश सरकार के आदेशानुसार होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम को बंद करने का आदेश निकला। जो शिक्षक इस कार्यक्रम के तहत रुचि और उत्साह से काम कर रहे थे उनका उत्साह भंग हुआ। लेकिन जिन शिक्षकों ने इस कार्यक्रम से अन्तःप्रेरणा ली थी वे फिर भी उन्हीं तरीकों को अपना रहे थे। यह अलग बात है कि प्रशासन की ओर से इसे प्रोत्साहन नहीं मिला। आशा-निराशा के इस समय के बाद राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा : 2005 से अध यापन की नई आशा जागी। कुछ अध्यापक पाठ्यचर्या निर्माण की इस प्रक्रिया में सहभागी बने। उन्हें भी शिक्षकों और विद्यार्थियों के पक्ष में अपनी बात कहने का सुनहरा अवसर मिला।

एक अध्यापक अपनी कक्षा को रुचिकर बना सकता है। उसके पास अपने अनुभव का विस्तृत क्षेत्र होता है। वह खोज के द्वार खोलकर अपने विद्यार्थियों को खजाने तक पहुंचा सकता है। इंद्रधनुष के रंगों के साथ ही प्रकाश, प्रकाश का गमन, सूर्य-चन्द्रमा-तारे, वर्ण-विक्षेपण को एक साथ जोड़कर

पढ़ाना एक अलग तरह का अनुभव और उपलब्धि है। शिक्षा को रुचिकर, स्थाई और आनंद का विषय बनाना अध्यापक पर निर्भर करता है कि वह किस तरह अपने प्रदर्शन को पारस्परिक संवाद के साथ प्रस्तुत करता या बांटता है।

अध्यापक के लिए सीधी-सरल भाषा का प्रयोग करना भी महत्त्वपूर्ण है ताकि विद्यार्थी किसी भी अवधारणा या विचार को सरलता से समझ सकें। इसके अलावा अध्ययन व अध्यापन के महत्त्वपूर्ण बिन्दु जैसे- तर्कशक्ति, अवलोकन क्षमता, खोज-शोध के लिए सही दिशा-निर्देशों का उचित उपयोग करना भी एक सफल अध्यापक के लिए आवश्यक है।

इस कार्यक्रम के तहत अध्यापकों ने कौशलों का विस्तार करना सीखा। उन्होंने किसी भी अध्याय को पढ़ाते हुए उसके उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में प्रयास करना सीखा और कक्षा में पाठ्यवस्तु से संबंधित अन्य सामग्री व संदर्भ-स्रोतों के उपयोग की अहमियत को भी समझा। इस तरह से शिक्षक इस बात के प्रति सजग रहता है कि विद्यार्थी जब स्वयं करता है तब ज्यादा सीखता है और अंत में स्वयं ही खोज से खजाने को प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह कभी समाप्त न होने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा रूपी खजाने तक पहुंचने के लिए खोज करना आवश्यक है और उसकी उपलब्धि को शिक्षा पटल पर चित्रित करना एक और पहल।

इस तरह के शिक्षण के लिए शिक्षक को यह स्वतंत्रता होनी चाहिए कि वह बच्चों की जरूरत के हिसाब से यह चुन सके कि वह कक्षा में अपने विषय को किन तरीकों से पढ़ाए। इसके लिए शिक्षक को स्वयं भी मेहनत करने की आवश्यकता है और प्रशासन को भी यह समझने की जरूरत है कि शिक्षकों को अपनी कक्षा की जरूरतों के हिसाब से काम करने की स्वायत्तता दिए जाने की जरूरत है। यदि प्रशिक्षणों के जरिए शिक्षकों की अकादमिक तैयारी बेहतर होगी तो वे तमाम मुश्किल परिस्थितियों में बेहतर तरीकों को चुनकर काम कर पाने की गुंजाइश निकाल सकते हैं।

अन्ततः, शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका बहुत ही रचनात्मक होती है और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। वह विद्यार्थी के ज्ञान में बढ़ोतरी ही नहीं कर रहा होता है बल्कि दुनिया को देखने के पूरे नजरिए में भी बदलाव ला रहा होता है। ◆